International Journal of Education and Science Research Review
Volume-7, Issue-6 January- 2019
E-ISSN 2348-6457
P-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org
Email- editor@ijesrr.org

गुप्तकाल में अस्पृश्यता

Manisha Meena

Assistant Professor History

Govt.College karauli raj

सार

फाह्यान के वर्णन से इस बात की जानकारी मिलती है कि गुप्त कालीन समाज में एक अस्पृर्श्य वर्ग अस्तित्व में था। फाह्यान के अनुसार वे नगर के बाहर निवास करते थे और केवल दिन में नगर में प्रवेश करते थ। वे ढोल बजाते हुए नगर में प्रवेश करते थे ताकि लोग उनके स्पर्श से बच सके। ढोल सुनकर लोग अपने घरों के दरवाजें और खिड़कियाँ बन्द कर देते थे जिससे उन पर दृष्टि न पड़े । उन पर दृष्टिमात्र पड़ने से द्विज अपवित्र हो जाता है, यह अस्पृश्यता का निकृष्ट रुप था। तात्कालीन स्मृतियो में शुद्धि के लिए धार्मिक अनुष्ठानों का वर्णन मिलता है। स्मृतियों में अस्पश्यों को चाण्डाल, अन्त्यज तथा प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न बताया गया है। उनकी वृत्तियों में जानवरों का शिकार, मछली पकड़ना, श्मशान की देखभाल करना था। इस काल में अस्पृश्यता विकसित ही नहीं हुई बल्कि चाण्डालों की संख्या में भी वृद्धि हुई।

प्रस्तावना

गुप्त काल के महान सफलता इस तथ्य को लेकर कही जा सकती है कि उन्होने शक तथा कुशाणों के विदेशी शासन को समाप्त किया । फलतः जिस प्रकार शुंग काल में वर्णाश्रम व्यवस्था के आधार पर समाज के संगठन का प्रयास किया गया था। ठीक उसी प्रकार गुप्तकालीन समाज में वर्णाश्रम व्यवस्था का पुर्नगठन किया गया लेकिन गुप्त सम्राटों का दिग्विजय बहुत ज्यादा व्यापक और स्थायित्व का उल्लेख मिला है, जिसके चलते इस काल की वर्ण व्यवस्था में उदार दृष्टिकोण का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । गुप्तकाल के अभिलेखों मे जातियों का कम उल्लेख मिलता है। प्रायः वर्णों का उल्लेख किया गया है । इसका तात्पर्य यह हुआ कि विभिन्न वर्णों के कर्तव्य पालन पर अधिक बल दिया गया था।इस वर्ण व्यवस्था में गतिशीलता भरी पड़ी थी तथा व्यवसायों के परिवर्त्तन और अर्न्तजातीय विवाहों में इस गतिशीलता उदार नीति का अनुभव किया जा सकता है। इतना ही नही राजाओं के कर्त्तव्यों में वर्ण व्यवस्था की रक्षा का भी उल्लेख परम्परागत रुप से अभिलेखों में मिलता है, लेकिन राजाओं के अधिकार में क्षत्रिय के अलावे ब्राह्मण , वैश्य और शूद्र भी थे। वस्तुतः धर्म में उदारता, आर्थिक क्षेत्र में आमूल – चूल समृद्धि, सामाजिक क्षेत्र में गतिशीलता इस गुप्त काल की खास विशेषताएँ है। इन समाजिक गतिशीलता के अनेक महत्वपूर्ण कारण था– विदेशियों का भारतीय समाज में सम्मिलित होना, अर्न्तजातीय विवाह होना, बहुसंख्य आदिवासी समाजों को शिल्पकारों के रुप में शूद्र में शामिल करना।

गुप्त काल के महान सफलता इस तथ्य को लेकर कही जा सकती है कि उन्होने शक तथा कुशाणों के विदेशी शासन को समाप्त किया । फलतः जिस प्रकार शुंग काल में वर्णाश्रम व्यवस्था के आधार पर समाज के संगठन का प्रयास किया गया था। ठीक उसी प्रकार गुप्तकालीन समाज में वर्णाश्रम व्यवस्था का पुर्नगठन किया गया लेकिन गुप्त सम्राटों का दिग्विजय बहुत ज्यादा व्यापक और स्थायित्व का उल्लेख मिला है, जिसके चलते इस काल की वर्ण व्यवस्था में उदार दृष्टिकोण का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । गुप्तकाल के अभिलेखों मे जातियों का कम उल्लेख मिलता है। प्रायः वर्णों का उल्लेख किया गया है । इसका तात्पर्य यह हुआ कि विभिन्न वर्णों के कर्तव्य पालन पर

अधिक बल दिया गया था।इस वर्ण व्यवस्था में गतिशीलता भरी पड़ी थी तथा व्यवसायों के परिवर्त्तन और अर्न्तजातीय विवाहों में इस गतिशीलता उदार नीति का अनुभव किया जा सकता है। इतना ही नही राजाओं के कर्त्तव्यों में वर्ण व्यवस्था की रक्षा का भी उल्लेख परम्परागत रुप से अभिलेखों में मिलता है, लेकिन राजाओं के अधिकार में क्षत्रिय के अलावे ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र भी थे। वस्तुतः धर्म में उदारता, आर्थिक क्षेत्र में आमूल – चूल समृद्धि , सामाजिक क्षेत्र में गतिशीलता इस गुप्त काल की खास विशेषताएँ है। इन समाजिक गतिशीलता के अनेक महत्वपूर्ण कारण था– विदेशियों का भारतीय समाज में सम्मिलित होना, अर्न्तजातीय विवाह होना, बहुसंख्य आदिवासी समाजों को शिल्पकारों के रुप में शूद्र में शामिल करना।

गुप्तोत्तर कालीन भारत में शूद्रों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति :–

पूर्व मध्यकालीन भारत में अछूतों, चंडालों, अस्पृश्य जातियों अर्थात् शूद्रों की स्थिति के अध्ययन का मुख्य स्रोत कौटिल्य का अर्थशास्त्रा है और उसके पूरक हैं मेगास्थनीज रिपोर्ट के कुछ अंश तथा अशोक के उत्कीर्ण लेख । शूद्र वर्ण के कृत्यों का निरूपण करने में कौटिल्य ने र्ध्मशास्त्रा के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है । उनका कहना है कि शूद्र का निर्वाह द्विजों की सेवा से होता है । किन्तु ये शिल्पियों, नर्तकों, अभिनेताओं आदि का व्यवसाय करके भी अपना निर्वाह करते हैं । ये व्यवसाय स्पष्टतया स्वतंत्रा थे और उनमें द्विजों की सेवा करना आवश्यक नहीं था।

कौटिल्य ने र्ध्मसूत्रा की जिस पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया है, उससे यह प्रतीत होता है कि शूद्रों को अपनी जीविका के लिस पूर्णतया उच्च वर्ण के मालिकों पर निर्भर रहना पड़ता था । अध्किाशं शूद्र पहले ही की तरह, कृषि मजदूरों और दासों के रूप में काम करते रहे। र्ध्मसूत्रों से ज्ञात होता है कि दासों को घरेलू कार्यों में लगाया जाता था । कौटिल्य ही एकमात्रा और प्रथम ब्राह्मण लेखक है जिनसे पता चलता है कि दासों को बड़े पैमानों पर कृषि उत्पादन कार्य में लगाया जाता था । मौर्य साम्राज्य में दासों, कर्मकारों, शिल्पियों और आदिवासियों का, जो कि स्पष्टतया शूद्र वर्ण के थे , बहुत बड़ा नियोजक था । इस दृष्टि से इस काल का कृषि उत्पादन संगठन ग्रीस और रोम के संगठन से कुछ हद तक मिलता–जुलता था ।

मेगास्थनीज के इंडिका और कौटिलय के अर्थशास्त्रा से ज्ञात होता है कि मौर्य काल में शूद्रों की आर्थिक स्थिति में बहुत से परिवर्तन हुए। पहली बार शूद्रों को, जो अभी तक कृषि मजदूर थे, राज्य की भूमि में बटाईदारी भी दी जाने लगी । किन्तु कृषि उत्पादन के लिए राज्य की ओर से शूद्रों को बहुत बड़े पैमाने पर दासरों और श्रमिकों के रूप में नियोजन किया जाता था। नीचे दर्जे के लोग या तो खास–खास किसानों के अधेन अथवा स्वतंत्रा रूप से काम करते थे और गाँवों में रहते थे ।

गुप्तकाल में अछूत, दलित, अस्पृश्य, डोम अर्थात् शूद्रों की स्थिति के अध्ययन के लिए विष्णु याज्ञवलक्य, नारद, वृहस्पति और कात्यान स्मृतियाँ मुख्य स्रोत हैं । इनमें याज्ञवल्क्य स्मृति सर्वाध्कि महत्वपूर्ण प्रतीत होती है क्योंकि बाद में चलकर उत्तर भारत में यही प्रमाण के रूप में अपनाई गई। इस स्मृति में शूद्रों के विरू(मनुस्मृति में किए गए अतिवादी प्रावधनों को या तो खंडित कर दिया गया है या उनकी अवहेलना कर दी गई है और उसमें ब्राह्मणों के लिए दागने ;अंकनद्ध, और देश से निकालने ;निष्कासनद्ध का दंडविहित किया गया है । कामदंक के नीतिसार, भरत के नाट्यशास्त्रा, वात्सयायन के कामसूत्रा, अमर सिंह के अमरकोश और वाराहमिहिर की वृहत्–संहिता जैसे तकनीकी ग्रंथों से भी इस काल में शूद्रों की स्थिति के विषय में कापफी जानकारी मिलती है ।

उत्कीर्ण लेखों में वर्ण के रूप में शूद्रों का उल्लेख नहीं है, किन्तु करदायी किसानों ौर कारीगरों का बार–बार उल्लेख हुआ है और कारीगरों के संघ की भी चर्चा है । इससे हमें शूद्रों की आर्थिक स्थिति में हुए परिवर्तनों का स्वरूप पता लगाने में सहायता मिलती है । सातवी शताब्दी ई. के पूर्वा(में हुआन–चाई ने शूद्रों को खेतिहरों के वर्ग के रूप में वर्णित किया है। नृसिंह पुराण से इस वर्णन की पष्टि होती है । वहाँ कृषि को शूद्र का कर्म बताया गया है । किन्तु प्रतीत होता है कि यह महत्वपूर्ण परिवर्तन गुप्तकाल में हुआ होगा । कृषक वर्गों में बहुत बड़ा भाग शूद्र का है ।

इस काल में हमें शूद्र राजाओं की चर्चा मिलती है, जैसे सौराष्ट्र, अवंति, अवुर्द और मालवा के। इनके साथ–साथ परंपरागत शूद्र, आभीर और मलेच्छ राजाओं का भी उल्लेख मिलता है, जो सभी सिंध् और काश्मीर प्रदेशों में शासन करने वाले बताए गये हैं । पार्जिटर ने उनका समय चौथी शताब्दी ईसवी सन् बताया है । परन्तु उन्हें जो शूद्र कहा गया है इसका कारण यह नहीं कि ये शूद्र वंश के थे, बल्कि इसलिए कहा गया है कि इन जनजातिय या विदेशी शासकों ने ब्राह्मणों को विशेष संरक्षण नहीं प्रदान किया था और वे ब्राह्मणध्म्र के अनुयायी नहीं थे ।

गुप्तकाल में डोम जाति के लोग उत्तर भारत में बहुत बड़ी तादाद में अदूत माने गये । संभवतया गुप्तकाल में जाति के रूप में आविर्भूत हुए । जैन स्रोत उन्हें अपेक्षित वर्ग का मानते हैं। शायन ये एक आदिवसी कबीले ;जनद्ध के लोग थे, जो ब्राह्मण समाज के निचले वर्गों में मिला दिए गए। किरात, शबर और पुलिंद ये वन्य जातियाँ म्लेच्छों के साथ अमरकोश में शूद्र वर्ग में समाविष्ट की गई है जिससे प्रकट होता है कि आदिवासी जनसमुदाय बड़ी संख्या में शूद्र सामुाय में लीन होते जा रहे थे । ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल में न केवल अस्पृश्यों की संख्या में वृद्धि हुई, बल्कि अस्पृश्यता की प्रथा भी कुछ दृण हुई । पफाहियान ने बताया है कि जब कोई चंडाल किसी नगर या बाजार के भीतर प्रवेश करता था तो वह एक लकड़ी को पीटता चलता था, ताकि लोग पहले ही समझ जाएँ कि चंडाल आ रहा है और उसके स्पर्श से बचने की कोशिश करें । किन्तु इस अस्पृश्यता नियम का पालन मुख्यतया चंडाल के विषय में किया जाता था । ऐसा कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिलता है कि डोम अस्पृश्य माने जाते थे । इसी प्रकार इसका भी कोई प्रमाण नहीं मिलता है कि डोम्ब अस्पृश्य माने जाते थे । इसी प्रकार इसका भी कोई प्रमाण नहीं मिलता है कि चर्मकार, जो परवर्ती काल में अछूत समझे जातने लगे, इस काल में भी वैसा माने जाते थे । चंडालों और अन्य अछूतों को छोड़कर ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता है कि कुछ शूद्र जातियों का पानी निषि(था । मृच्दकटिक में कहा गया है कि ब्राह्मण और शूद्र एक ही कुएँ से पानी भरते थे ।

सर्वप्रथम शांतिपर्व में घोषणा की गई है कि चारों वर्णो को वेद सुनाना चाहिए और शूद्र से भी ज्ञात प्राप्त करना चाहिए । यह विधन मनु के विधनों के नितान्त विरू(है जिन्होंने ऐसे मामलों में कठोर दंड बताया है । शांतिपर्व का यह उपदेश शूद्रों के वेद जिसे चारो वेदों के सार से रचा गया है और जिसका उपयोग सभी जातियों के लोग कर सकते हैं । इतना ही नहीं, योग और सांख्य दर्शन भी, जो संभवतया गुप्तकाल में ही अपने चरम रूप में विकसित हुए थे, शूद्रों के लिए वर्जित नहीं थे।

गुप्तकाल में भी कई शिक्षित शूद्रों के उदाहरण दिखाई पड़ते हैं । याज्ञवल्क्य के एक श्लोक से प्रकट होता है कि भृतकों के लिए भी अध्यापक होते थे । मृच्छकटिक में न्यायाधीश शकार को पफटकारता है– अरे नीच, तुम वेद की बात कर रहे हो, और तब भी तुम्हारी जीभ नीचे न गिरी । पिफर भी इसमें कोई संदेह नहीं कि उच्च वर्णों की तुलना में शूद्रों का सांस्कृतिक स्तर नीचे था । उदाहरणार्थ, नाटकों में स्त्रिायों और निम्न जाति के पात्रा गँवारों की भाषा प्राकृत बोलते थे, जबकि उच्च वर्णों के पात्रा शिक्षितों की परिष्कृत भाषा संस्कृत बोलते थे लेकिन नाट्यशास्त्रा में कहा गया है कि रानियाँ, वेश्याएँ और कलाकार महिलाएँ परिस्थिति के अनुसार संस्कृत बोल सकती हैं । कभी–कभी प्राकृत की विभिन्न बोलियों के प्रयोग में भी जातीय स्तर का विचार किया जाता था । नाटकों में ऊँची हैसियत के पात्रा सौरसेनी बोलते थे और नीचे पात्रा मागधी प्राकृत । इन सबों से पता चलता है कि निम्न वर्गों को लिखने–प

गुप्तोत्तर काल में कई सुधरवादी विचारधराओं, विशेषकर वैष्णव सम्प्रदाय का उदय हुआ, जिससे बहुत हद तक शूद्रों को धर्मिक समता प्राप्त हुई । वैष्णव ध्र्म इस काल में विकास की चोटी पर पहुँच गया था, जब न केवल उत्तर भारत में अपितु दक्षिण और पश्चिम भारत के कई भागों में इस सम्प्रदाय के अद्वितीय प्रभाव को प्रमाणित करने वाले पुरालौकिक, मुद्रात्मक और मूर्ति संबंधे अभिलेख भारी संख्या मे मिलते हैं । महाभारत और पुराणों में इस सम्प्रदाय के जो सि(ांत प्रतिपादित हैं, उनसे प्रकट होता है कि ब्राह्मण ध्र्म की प्राचीन कट्टरपंथी परंपरा की भाँति इस वैष्णव सम्प्रदाय ने शूद्रों और अस्पृश्यों के लिए अपना द्वारा बंद नहीं रखा, बल्कि उन्हें भी ईश्वर को जानने और मोझ प्रापत करने का अध्किार दिया । वैष्णव ग्रंथों मे इस बात पर हमेशा जोर डाला जाता रहा कि कृष्ण, नारायण या वासुदेव

की भक्ति के द्वारा स्त्रिायाँ और शूद्र भी मुक्ति पा सकते हैं । भगवान को यह घोषित करते हुए चित्रित किया गया है कि ब्राह्मण से लेकर श्वपाक तक सभी मेरी भक्ति से पवित्रा हो जाते हैं । यदि अत्यज एक बार भी ईश्वर का नाम लेता है तो वह जन्म मरण के बंध्न से मुक्त हो जाता है ।

लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं है कि गुप्तोत्तर काल में शूद्रों के धर्मिक अध्किारों में वृ(हुई और कई कर्मानुष्ठानों के विषय में उन्हें तीनों उच्च वर्णों क समकक्षता मिली । ऐसा मत वयक्त किया गया है कि शूद्रों के आध्यात्मिक उत्थान के पीछे ब्राह्मणों का स्वार्थ काम कर रहा था क्योंकि वे चाहते थे कि अध्कि से अध्कि लोग ब्राह्मणीय कर्मों का अनुष्ठान करें । किन्तु पूर्वकाल में भी तो ब्राह्मणों का ऐसा स्वार्थ रहा होगा, जबकि ऐसी प्रवृत्ति का आभास बहुत कम मिलता है । वास्तव में शूद्रों के धर्मिक अध्किारों में वृ(उनकी भौतिक स्थिति में यज्ञ कराने में समर्थ हुए क्योंकि यज्ञ कराने की योग्यता व्यववहन क्षमता के साथ निकटतः संब(मानी जाती थी, जो स्वाभाविक ही है ।

निष्कर्ष :–

गुप्तोत्तरकाल में अछूतों, दलितों, चंडालों, डोमों, अस्पृश्य जातियों अर्थात् शूद्रों की स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए । इसकाल में न केवल मजदूरों, कारीगरों और भारवाहकों की मजदूरी की दरें बढ़ी बल्कि दास और मजदूर लोग धीरे–धीरे बटाईदार और किसानें होते जा रहे थे । सातवीं सदी तक पहले–पहले शूद्र बड़े पैमाने पर किसान के रूप में दिखलाई पड़ते हैं । यह परिवर्तन शूद्रों की राजनीतिक सहविध्कि स्थिति में व्यापक रूप में प्रतिपफलित हुआ है । शांतिपर्व में शूद्र मंत्राी नियुक्त करने का जो उपेश दिया है, इसको तो अध्कि महत्व नहीं भी दिया जा सकता है । किन्तु इसमें संदेह नहीं कि शिल्पी संघों के प्रधन जिला प्रशासन के कार्य से जुड़े थे, और संकट की घड़ियों में शूद्रों को शस्त्रा उठाने का अध्किार मिल गया था । वर्ण विषयक कानूनों में कुछ ढिलाई आई आौर शूद्रों के प्रति बरते जानेवाले कई निष्ठुर नियम रद्द किए गए ।

गुप्तोत्तरकाल काल में शूद्रों के धर्मिक अध्किार में काफी वृद्धि हुई । हाँ, अस्पृश्यों की सामाजिक स्थिति पहले से भी अध्कि बुरी हुई । यद्यपि वे सि(ांत शूद्र माने जाते थे, किन्तु सभी व्यावहारिक विषयों में वे पृथक् समुदाय ही थे । पिफर भी ऐसा सोचना गलत होगा कि गुप्तकाल में शूद्रों का काई अन्य वर्ग भी सामाजिक दृष्टि से अधेगत था, भोजन और विवाह के रिवाज के बारे में इसका कोई साक्ष्य नहीं मिलता है । जहाँ तक शिक्षा का प्रश्न है, शूद्रों को रामायण, महाभातर और पुराण सुनने का और कभी–कभी वेद सुनने का भी अध्किार निस्संदेह रूप से मिल गया था । सभी बातों पर विचार करते हुए हम कह सकते हैं कि गुप्तोत्तर काल में शूद्रों की स्थिति में जो आर्थिक, राजनीतिक, सहविध्कि, सामाजिक और धार्मिक परिवर्तन हुए, वे उक्त समुदाय की बदलती हुई सामाजिक स्थिति के सूचक है ।

सन्दर्भ सूची :–

- आर.एस.शर्मा, शोसल चेंज इन अर्ली मेडिवल इंडिया ;सर्का एडी 500–1200द्ध
- आर.एस.शर्मा, शूद्राज इन संशिएट इंडिया, परिशिष्ट–2
- पाणिनि, VI 2.62.
- अर्थशास्त्रा, II 4.
- आर.एस.शर्मा, शूद्राज इन संशिएट इंडिया, पृ0 167–78

- जटाशंकर प्रसार मिश्र, अलबेरूनी के भारत का राजनीतिक और सामाजिक अध्ययन, काशी हिन्दू वि0 वि0 वाराणसी, 1963
- आर भूषण, एंसिएंट इंडियन हिस्ट्री, श्री पबिल्शंस एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली–2010
- के.एल. चंचरीक दलितस् इन एंसियंट एण्ड मेडिवल इंडिया, श्री एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2010
- एस. गुप्ता, भारत में जाति व्यवस्था, सूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली–2011
- रश्मि पाठक, प्राचीन भारत का समााजिक इतिहास, अर्जून पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 2012
- देव प्रकाशन, जातिगत सामाजशास्त्रा, ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2017
- के.सी. जैन, प्राचीन भारत का इतिहास : 650 ई0 में से 1200 ई0 तक : यूनिवर्सिटी पब्लिकेश्न, नई दिल्ली, 2012
- के. एल. चंचरीक, भारतीय दलित जाति कोश, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली 2012.